आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन में 'मानवीय गरिमा' की अवधारणा: गाँधी और अंबेडकर के तुलनात्मक संदर्भ में

सामाजिक विमर्श
1–17
© 2019 SAGE and CSD
Reprints and permissions:
in.sagepub.com/journals-permissions-india
DOI: 10.1177/2581654319879554
http://smv.sagepub.in

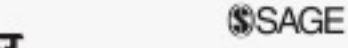

रवि रंजन[1]

सार

इस शोध लेख[2] में गाँधी और अंबेडकर द्वारा प्रदिपादित मानवीय गरिमा की अवधारणा को समझने हेतु उनके "स्व", "अस्पृश्यता" और "उद्धारकर्ता" के सामाजिक प्रोजेक्ट के तर्कों एवं उनके राजनीतिक अभ्यासों के मानवीय पक्षों का विश्लेषण किया गया है। आत्मसम्मान, सामाजिक मान्यता और मानवीय प्रतिष्ठा से पूर्ण बहुलतावादी वैश्विक जीवन व्यवस्था को स्थापित करने हेतु उनके समान विचारों में एकसूत्रता और असहमति दोनों साथ-साथ देखने को मिलती है। आधुनिक भारत के दोनो निर्माताओं के बीच इन सहमतियों और विभेदों के माध्यम से हम सामाजिक व्यवस्था में अपमान पहुँचाने वाली संरचना के निर्माण प्रक्रिया को समझ सकते हैं। इन दोनों विचारकों ने निरंतर पदसोपान और सामाजिक क्रम को अपमान से बचाने व मानव प्रतिष्ठा को बनाए रखने हेतु आजीवन प्रयास किए। जाति-आधारित हिंसा और अत्याचार से मानवीय स्वतंत्रता और समानता का हनन होता है। आधुनिक भारत में गाँधी और अम्बेडकर ने पुरजोर विरोध करते हुवे एक मुक्त वातावरण में सामाजिक अस्मिता और मानवीय गरिमा पर बल दिया है।

कुंजी शब्द

मानवीय गरिमा, स्व, अपमान, सामाजिक अस्मिता, आत्मसम्मान

प्राक्कथन

आज जब संपूर्ण विश्व सत्य और शांति के मानव दूत महात्मा गाँधी का 150वाँ जन्म दिन मना रहा है तो यह जानना आवश्यक हो जाता है कि किस प्रकार गाँधी का दर्शन आज भी प्रासंगिक है और मानवीय जीवन की संभावनाओं को हक़ीकत में बदलने का अजमाया हुआ तरीका है। कुछ वर्ष पहले

[1] राजनीति विज्ञान विभाग, ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
ई-मेल- ranjanr1@gmail.com

[2] यह लेख गाँधी मार्ग (अंग्रेजी) में प्रकाशित लेख "गाँधी एंड अंबेडकर ऑन ह्यूमन डिग्निटी" का संशोधित और विस्तृत स्वरूप है। लेखक गाँधी मार्ग की स्वीकृति के लिए आभारी है।

गुणात्मक शोध : एक परिचय

डॉ. रवि रंजन* & सन्नी**

यह लेख गुणात्मक शोध पद्धति से संबंधित है, इसका मुख्य ध्येय यह समझना है कि सत्य की खोज करते समय हम तथ्यों को कैसे जान सकते हैं। शुद्ध मात्रात्मक विधि का उपयोग करके सामाजिक स्थिति की जटिलता की उचित प्रकार से जांच नहीं की जा सकती, यह आवश्यक है लेकिन सामाजिक वास्तविकता और व्यक्ति के स्थानिक इतिहास को समाहित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। दूसरों की वास्तविकता का अनुमान लगाना एक सामूहिक यात्रा है, इस यात्रा में एक मानवजाति वर्णन विधि, केस अध्ययन और सामाजिक व्याख्यान महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है। इसी कारण अल्बर्ट आइंस्टीन ने उचित दावा किया है कि "जो गिना जा सकता है आवश्यक नहीं कि उस पर पूरा भरोसा हो, और आवश्यक नहीं कि जिसकी महत्ता हो उसे गिना जा सकता हो।"

सामाजिक विज्ञान शोध के आयामों में पिछले कुछ दशकों में विश्व स्तर पर बदलाव हुए है जिसने सूचना एवं प्रोद्योगिकी के युग में ज्ञानमीमांसा के पहलुओं में हस्तक्षेप कर सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित किया है, जिसको सामान्य रूप से विश्वविद्यालय प्रणाली और विशेष रूप से शोध संस्थानों के शैक्षणिक चिंताओं के साथ शामिल करने की आवश्यकता है। मानक सिद्धांतों की तुलना में सर्वेक्षण तकनीकों और मात्रात्मक पद्धतियों पर अधिक जोर दिया जाता है और स्थानीय उपकरणों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है जो आज की सामाजिक समझ को प्रभावित करते हैं, संतुलित शोध करने के लिए ऐसी समझ को शामिल करने की आवश्यकता है। इसलिए वास्तव में इस बात पर जोर देना महत्वपूर्ण है कि सामाजिक क्या है? (Bhargava: 2010, 1992)

कुंजी शब्दः प्रत्यक्षवादी, आधुनिकतावादी, अन्वेषणात्मक, ग्राउंडेड सिद्धांत, मानवजाति वर्णन, फेनोमेनोलॉजी, क्षेत्रीय शोध, सामान्यीकरण।

गुणात्मक शोध क्या है?

गुणात्मक शोध एक समग्र उपागम है जो मानवों की जटिल वास्तविकता को दर्शाता है और मानव अनुभवों को अपने केंद्र में रखता है। गुणात्मक शोध में मानव व्यवहार के संदर्भ में आमतौर पर इस्तेमाल की जाने वाली शोध रणनीतियों की संरचना में लोगों के साथ निरंतर संपर्क की सुविधा होती है जहां वे लोग सामान्य रूप से अपना समय बिताते हैं और चर्चाएं करते है। यहाँ आम तौर पर विषयों के साथ शोधकर्ता की भागीदारी का एक उच्च स्तर होता जिसमें असंरचित साक्षात्कार का प्रयोग कर प्रतिभागी के अवलोकन की रणनीतियों और गहराइयों का अध्ययन किया जाता हैं। इसमें उत्पादित आंकड़ों की स्थितियों में

* Department of Political Science, Zakir Husain Delhi College, University of Delhi
** PhD Research Scholar, Department of Political Science, University of Delhi

Representation of Women In Print Media In India: A Case Study of Times of India

Tripta Sharma
Department of Political Science, Zakir Husain Delhi College,
University of Delhi, India, stripta@gmail.com

Abstract. This paper seeks to analyse the portrayal and representation of women, their rights and concerns in the print media in India. Through a content analysis of a systematic-random sample of articles published in the Times of India (ToI), the largest circulated English daily, spanning over thirty years (1980 - 2010), the study shows that news related to women is not only abysmal in coverage but also gender insensitive. More importantly, this minuscule coverage is limited to issues such as crime and issues that matter to them are absent. Finally, the paper seeks to reflect upon the reasons for such a coverage by locating the nature of mainstream media into the wider coalesce of market and patriarchy.

Keywords - *Print media, media and women, gender studies, mainstream media, newspaper*

JM&C
Volume 3 Issue 2
© Central University of Tamil Nadu
Thiruvarur - India

Sharma, Tripta. (2019). Representation of Women In Print Media In India: A Case Study of Times of India, *Journal of Media and Communication*, 3(2): 35- 48

ISSN - 2229-3620
APPROVED UGC CARE
HIS

SHODH SANCHAR BULLETIN
Vol. 10, Issue 40, October-December, 2020
Page Nos. 72-76

AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

THE CAMBODIAN CRISIS : ASEAN'S DIPLOMATIC INITIATIVES FOR ITS RESOLUTION

Bobby Sorokhaibam*

ABSTRACT

The Cambodian conflict began with the Vietnamese invasion and occupation of Cambodia in December 1978. During this time, the region was embroiled in the grip of one of the worst crises which led to the polarization of Southeast Asia into two hostile political groups Communist Indo China and Noncommunist ASEAN. The Cambodian conflict became more complex and serious as it started to involve other external players like China and Soviet Union. This paper is an attempt to study the Cambodian crisis by analysing the geopolitical situation at the time the conflict broke out and its impact on the Southeast Asian region. It highlights the diplomatic initiatives undertaken by ASEAN to find a comprehensive political solution to the crisis that engulfed Southeast Asia in turmoil from 1978 till 1991.

Keywords : Cambodian crisis, ASEAN, Southeast Asia, Vietnam, Diplomacy, Indo China

The period from 1979 to 1991 may be considered as a significant phase in the history of modern Southeast Asia. During this time, the region was embroiled in the grip of one of the worst crises which ensued due to the Vietnamese incursion into Cambodia in December 1978. The conflict led to the polarization of Southeast Asia into two hostile political groups – a non-Communist group represented by ASEAN and a Communist group of the three Indochinese states led by Vietnam. The Cambodian conflict became more complex and serious as it started to involve other external players like China backing Khmer Rouge and Soviet Union supporting Vietnam. Understanding the nature of the Cambodian problem requires analysing the geopolitical situation at the time the conflict broke out, since apart from ASEAN various other external players were involved in ultimately resolving the crisis.

This paper examines the origin of the Cambodian crisis and the various diplomatic initiatives undertaken by ASEAN to find a political solution to the crisis. The strategies adopted for resolving the crisis was a highlight of ASEAN's diplomatic skills since, despite internal differences, the ASEAN showed unprecedented diplomatic skills in managing the crisis

GENESIS OF CAMBODIAN CONFLICT

The Cambodian conflict began with the Vietnamese invasion and occupation of Cambodia in December 1978. The genesis of the Vietnamese–Kampuchean conflict can be traced to the seventeenth century. Three main causes can be identified as having influence on the conflict. The first can be referred to Vietnam's need for rice and cultivable land that led the Vietnamese to expand into Cambodia which was sparsely populated and had very fertile land along the Mekong Delta. The second factor can be linked to the French colonial policy. Cambodia became a French protectorate in 1863 and was eventually merged into the "Union of Indochinoise" along with Annam and Laos, the other two protectorates by 1887. The third historical factor was the ensuing territorial disputes due to ambiguous borders inherited from French colonial power. The French between 1869 and 1942, added large areas of Cambodian territory to their Cochin china colony and their protectorate of Annam. However, when the French rule

*Zakir Husain Delhi College, University of Delhi, Delhi